IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

डॉ. दिवाकर पाण्डेय का कहानी-संग्रह 'रैन भई चहुँ देश': एक समीक्षात्मक अध्ययन

आमोद प्रकाश चतुर्वेदी

सहायक प्राध्यापक-हिन्दी

ग्राम भारती महाविद्यालय, रामगढ़

कैमूर-821110 (बिहार)

सारांश

कहानियाँ अनंत काल से मानव-समाज का अभिन्न अंग रही हैं। कहना न होगा कि वर्तमान में हिन्दी-कहानी का रूप, कलेवर उसी मानक के अनुसार है जो अंग्रेजी भाषा में शार्ट स्टोरी के लिए तय किये गये थे। हिन्दी में इस मॉडल की कहानियां 19वीं सदी से लिखी जाने लगीं थी। साहित्य की किसी भी अन्य विधा से अधिक पढ़ी जाने वाली विधा है कहानी। बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्यकार प्रोफेसर डॉ. दिवाकर पाण्डेय ने साहित्य की लगभग सभी विधाओं में अपनी लेखनी चलाई है। उनके कई उपन्यास, कविता-संग्रह, लेख, निबंध और कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। डॉ. दिवाकर पाण्डेय वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा में हिन्दी और भोजपुरी दोनों विभागों के अध्यक्ष हैं। इनके इस संग्रह में भावुक कर देने वाली कहानियाँ हैं, हमारी शिक्षा-व्यवस्था, राजनीति और समाज को कटघरे में खड़ी करती कहानियाँ हैं, राजनीतिक दलों की सच्चाई को उजागर करती कहानियाँ हैं और स्त्री-पीड़ा को स्वर देती कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ पाठक को हँसाती भी हैं, रुलाती भी हैं और जगह-जगह आक्रोशित भी करती हैं। प्रस्तुत लेख में उनके प्रथम कहानी-संग्रह 'रैन भई चहुँ देस' का एक समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

बीज-शब्द

आंचलिकता, स्त्री-वेदना, परिवेश, यथार्थ, मोहभंग

डॉ. दिवाकर पाण्डेय का यह कहानी-संग्रह सन् 2015 में आयुष्मान पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली से छपा था और यह लेखक का प्रथम कहानी-संग्रह है। इस संग्रह में कुल ग्यारह कहानियाँ हैं। इनके शीर्षक हैं- 'बौना', 'चक्रव्यूह', 'और चाँद खो गया', 'मुक्तिदाता', 'रैन भई चहुँ देश', 'बॉडीगार्ड', 'मिशन एन. जी. ओ.', 'तुमुल कोलाहल कलह में', 'उत्तर बैताल कथा', 'लकठुआ ब्रांड' और 'लकठुआ ब्रांड-II' | संग्रह का नाम इसकी पाँचवी कहानी 'रैन भई चहुँ देश' के नाम पर है।

भाषिक दृष्टि से संग्रह की तीन कहानियाँ 'बौना', 'चक्रव्यूह' और 'रैन भई चहुँ देश' आंचलिक कहानियों की परम्परा में आती हैं। किंतु इस आंचलिकता में दुरूहता नहीं है। ये तीन कहानियाँ लेखक को बड़े ही शानदार ढंग से आंचलिक कथाकारों की परम्परा में खड़ा कर देती हैं। जहाँ आंचलिकता लेखन की सीमा नहीं है बल्कि अपने परिवेश के प्रति दृढ़ सजगता है।

'चक्रव्यूह', 'और चाँद खो गया', 'मुक्तिदाता' और 'रैन भई चहुँ देश' के केंद्र में स्त्री-वेदना है। 'चक्रव्यूह', 'और चाँद खो गया' तथा 'मुक्तिदाता' नामक कहानियों में पीड़िता उपस्थित है जबकि 'रैन भई चहुँ देश' की पीड़िता कहानी में प्रत्यक्ष नहीं है, वह उसके मायके के नौकर गिरिधर की स्मृतियों में है। अपने हिस्से की पीड़ा वह अकेले ही नहीं भोगती है, गिरिधर भी भोगता है।

'मिशन एन.जी.ओ.', 'उत्तर बैताल कथा', 'लकठुआ ब्रांड' व 'लकठुआ ब्रांड-2' हास्य-व्यंग्य कोटिक कहानियाँ हैं। ये जहाँ एक ओर हास्य की सृष्टि करती हैं वहीं दूसरी ओर इनका व्यंग्य, विद्रूपताओं पर कहीं हल्का तंज कसता है तो कहीं झन्नाटेदार थप्पड़ मारने में भी संकोच नहीं करता है। इनमें कथा के शिल्प और व्यंग्य लेखन की ईमानदारी का सही परिपाक हुआ है।

'बौना' भारतीय वामपंथ की सच्चाइयों को उजागर करती है और 'तुमुल कोलाहल कलह' नामक कहानी संयुक्त परिवार के सदस्यों का मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करती है। 'बॉडीगार्ड' लोकतांत्रिक व्यवस्था में फँसे एक स्वाभिमानी पुलिसवाले की गाथा है।

'बौना' संग्रह की प्रथम कहानी है। इस कहानी में लेखक ने यह दिखाया है कि अपने मोहक सिद्धांतों और आदर्शवादी विचारधारा के बावजूद जन साधारण का, भारतीय वाम-पंथ से मोह-भंग क्यों होता जा रहा है। इसको और अच्छे ढंग से समझने के लिये हमें यह देखना चाहिये कि 1885 में स्थापित कांग्रेस का अपने स्थापना के मूल उद्देश्यों से अलग, धीरे-धीरे भारतीयकरण होने लगा था जबकि 1925 में सोवियत सोश्यलिस्ट रीवोलूशन से प्रेरित भारतीय कम्यूनिष्ट पार्टी भारतीय जनता के मूल मिजाज को कभी नहीं समझ पायी। इसके नेता जमीनी नहीं हो पाये। कम्यूनिस्ट पार्टी अपनी स्थापना के उद्देश्य में तो यह लिखती है कि राष्ट्रीय स्वाधीनता हेतु गठित की गयी किंतु यह बात किसी से छिपी नहीं की मुहम्मद अली जिन्ना के 'डाइरेक्ट एक्शन डे' का सीपीआइ ने समर्थन किया था तथा द्वितीय विश्व युद्ध में अंग्रेजों का असहयोग करने को तैयार कम्यूनिस्ट पार्टी, रूस के विश्व-युद्ध में उतरते ही ब्रिटिश सरकार की सहयोगी बन गयी।

'बौना' कहानी के रविनाथ प्रकाश एक 'टाइप्ड' कम्यूनिस्ट नेता हैं। ये बाहर से कुछ और अंदर से कुछ और हैं। 'भरोसा' को हम एक वर्ग-चरित्र के रूप में ले सकते हैं। अंग्रेज कहानीकार Katherine Mansfield की एक बड़ी प्रसिद्ध पंक्ति है- Hungry people are easily lead.[1] वामपंथी आंदोलनों ने इसे भरपूर भुनाया है। लेखक ने जिस प्रकार से भरोसा के चरित्र को उसकी स्मृतियों के द्वारा उभारा है, उससे 'भरोसा' की आर्थिक स्थिति का साफ पता चलता है। 'भरोसा', 'रविनाथ प्रकाश' से बहुत प्रभावित है। रविनाथ प्रकाश के व्यक्तित्व और उनकी वक्तृत्व शैली पर भरोसा लहालोट है। भरोसा की दृष्टि में रविनाथ प्रकाश का कद बढ़ता जाता है-

" कौमरेड रब्बी जब भी हाथ उठाकर बोलते हैं तो कितनी जोर से गड़गड़ाती हैं तालियाँ। तड़-तड़-तड़-तड़। हर आदमी अपने बित्ते से सात बित्ते का होता है, तुम नौ बित्ते के हो रबिनाथ परगाSSस।"[2]

दरअसल हमारे आस-पास भरोसा जैसे चरित्र बहुतायत में मिल जायेंगे जो इन घाघ 'रविनाथ प्रकाशों' की वायवीय बातों से आकर्षित होकर उन्हें बहुत महान समझने लगते हैं। भरोसा भी इसी तरह रविनाथ प्रकाश के भाषण पर लट्टू हो जाता है-

"...क्या किरान्ती मचायी थी रब्बी बाबू ने अपने भाखन में। 'गरीब जुलुम सहते हैं इसीलिये अमीर उन पर जुलुम करते हैं।' वाह! क्या मजे की बात कही है कौमरेड रबिनाथपरगास ने।"[3]

किंतु जैसे-जैसे वे इस नेताओं के सानिध्य में आते जाते हैं, इनका मोह टूटने लगता है। चेतना के स्तर पर भरोसा सजग है। वह रविनाथ प्रकाश के भाषणों से अभिभूत अवश्य है किंतु वह उनके क्रियाकलापों पर पैनी दृष्टि गड़ाये हुये है। बड़ी सजगता से उनका मूल्यांकन भी करता है। उसे याद आती है बाबू बहादुर सिंघ की बात- " कि देखो भरोसा बाबू। तुम्हारी पार्टी में कुछ ऐसे जिया-जंतु घुस गये हैं जो अपनी सुरक्षा के लिये हैं। सिर्फ अपनी गोटी सेंकने के लिये। साल में सौ किंटल खेसारी बेचते हैं, ऊपर से तीस-चालीस हजार का महीना ढाहते हैं, और बन जाते हैं कौमरेड...।"[4]

हालाँकि उस दिन भरोसा को सिंघ जी की बात बहुत बुरी लगी थी किंतु बाद में वह सोचता है- " ठीक ही तो कहा था बहादुर सिंघ ने। कौमरेड रब्बी जिया-जंतु ही तो है...बिसखोपड़ा।"[5]

इसी मूल्यांकन के आधार पर सात बित्ते के भरोसा को नौ बित्ते के लगने वाले रविनाथ प्रकाश का कद धीरे-धीरे घटता हुआ दिखाई देने लगता है। सार्वजनिक मंचों पर जिस समानता की बातें रविनाथ प्रकाश करते हैं उनकी घोर अवहेलना वे अपने नौकर रामायण के प्रति अपने व्यवहार द्वारा करते हैं। धर्म को अफीम बताने वाला नेता अपने घर की पूजा और आरती में नियमित सम्मिलित होता है। यह देखकर भरोसा बेचैन हो उठता है-

"...बहुत बड़े रहस्य लगने लगे थे कौमरेड। यह रहस्य सेमरबन्ना के बरमपिचास जैसा है कि बाबाखोह के मसान जैसा। कालीधाम के सोखा जैसा है कि खैराघाट के राकस जैसा।...पूरी तरह से अपने में खो गया था भरोसा।"[6]

नौ बित्ते के रविनाथ प्रकाश अपनी कथनी और करनी में भेद के कारण अंत में बित्ते भर के रह जाते हैं। और इस प्रकार कहानी का नाम 'बौना' सार्थक हो जाता है।

भाषिक प्रयोग तथा परिवेश, इन दोनों दृष्टियों से भिन्न होने के बाद भी 'चक्रव्यूह' तथा 'और चाँद खो गया' समाज की एक ही विसंगति को केंद्र में रखकर लिखी गयी कहानियाँ हैं। और वह है-बेटा पैदा होने की चाह। 'चक्रव्यूह' का परिवेश ग्रामीण है। ग्राम्य-शब्द-प्रयोगों, मुहावरों और ग्राम्य-गीतों यथा सोहर के माध्यम से लेखक परिवेश को जीवंत करने में पूर्ण सफल रहा है। आंचलिकता पर बहुत बहस हो चुकी है हिंदी साहित्य में। पर यहाँ जोर देकर कहा जा सकता है कि आंचलिकता शब्दों की हो सकती है, कहानी की नहीं। मानव-मन की पीड़ा भौगोलिक सीमाओं को लाँघ जाती है। स्त्री चाहे ग्रामीण क्षेत्र की हो या शहरी क्षेत्र की, भोजपुरी भाषा क्षेत्र की हो या ओड़िया भाषा क्षेत्र की, उसकी समस्यायें एक-सी हैं। यहाँ याद आती है, धूमिल की एक कविता-

" ...क्या तुम्हें अब भी/ उसी का भरोसा है

जिसके अधिकार में हमारी लिट्टी है/ चावल है। इडली है/ दोसा है

हाय जो असली कसाई है

उसकी निगाह में/ तुम्हारा यह तमिल दुख

मेरी इस भोजपुरी पीड़ा का/ भाई है।"

- 'भाषा की रात' ('धूमिल')[7]

'और चाँद खो गया' का परिवेश शहरी है। पर 'चक्रव्यूह' की रधिया और 'और चाँद खो गया' की अलंकृता में कहाँ कुछ भी भिन्न है। यह समानता उन दोनों की प्रथम संतानों के नाम से भी परिलक्षित होती है। लेखक ने जहाँ रधिया की बड़ी बेटी का नाम किरनी रखा है वहीं अलंकृता की बड़ी बेटी का नाम किरण है। लेखक नाम के बहाने यहाँ स्पष्ट संकेत करता है कि जो बिटिया प्रेम की किरण के रूप में संसार में आती है, वही बेटे की चाह में कैसे बोझ बन जाती है। रधिया और अलंकृता दोनों ही तीन-तीन बेटियों की माँएँ हैं। रधिया का तो दो बार गर्भपात भी हो चुका है। पर एक बात का अंतर है। रधिया को बेटी पैदा होने के कारण तकलीफ नहीं बल्कि बिटिया जनमाने के पश्चात उसके पति गोपाल और उसकी सास सनीचरी द्वारा भावी प्रताड़ना है। वह मनाती है- " हे भगवान अबकी बार सत निबाहना। मुझ करमजली का दिन लौटाइयेगा दीनानाथ! नहीं तो...? ...अगर इस बार फिर नन्हकी को दिया तो ई करमनाशी सनीचरी मुझे जिंदा ही चबा जायेगी।...हे सीतानाथ! हे किशन-कन्हैया!!...।"[8] चौथे गर्भ के समय उसकी सास धमकाती है-

" अरे राम! ई देखो धनपुरही गैया को। सोहर गाSS रही है। साल भीतर ही बछिया बिया जा रही है धम्म से। 'मोटी-ताजी धमधूसर बछिया... इस बार जो बछिया बियायी नSS तो इसी पहसुल से...।"[9]

रधिया को दो स्तरों पर पीड़ा भोगनी पड़ती है। प्रसव की पीड़ा और गोपाल की मार। सास के ताने और गालियाँ अलग से। रधिया को हर बार प्रसव के बाद यह सब झेलना होता है। सनीचरी भी स्त्री है, वह कहाँ दूसरी स्त्री को समझ पाती है। दोनों भौजाइयाँ क्या रधिया की पीड़ा को समझ पातीं है। आज के घोषित पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री पर हो रहे अत्याचार की सूत्रधार स्त्री ही तो है। सेमिनारों में, बड़े-बड़े मंचों पर स्त्री-चेतना की बात होती है पर क्या सच में एक स्त्री, दूसरी स्त्री की पीड़ा को समझ पा रही है। विवाह के बाद जब बहू ससुराल जाती है तो क्या उसकी सास उसे बेटी की तरह स्वीकार कर पाती है, या बहू कभी अपनी सास को माँ के रूप में स्वीकार कर पाती है। यह सब ऐसे प्रश्न हैं जिनका उत्तर स्त्रियों को ही देना है। इन कहानियों में लेखक ने इन प्रश्नों को प्रत्यक्ष रूप से नहीं उठाया है। वह 'नरेटर' है। किंतु वह अपने लेखन द्वारा पाठक के कलेजे में एक हूक पैदा करने में सफल हो जाता है। लेखक ने 'लतमरवा चौखट' की गँवई रूढ़ि का बड़ा मार्मिक प्रयोग किया है। 'तृन धरि ओट कहत वैदेही' की वैदेही का सहारा वह तिनता है। रधिया के लिये वह सहारा, वह ओट लतमरवा चौखट है-

" जिस चौखट पर रधिया बैठी थी वह लतमरवा चौखट कहलाता है। मुख्य द्वार पर रहता है वह। अंदर जाओ तो लात मारकर, बाहर निकलो तो लात मारकर। रात दिन सबका लात खाता रहता है बेचारा।"[10] रधिया भी तो इस घर का लतमरवा चौखट ही है। जब मन करे तब एक लात मार दे कोई उसे। वह सब लतमरवा चौखट की तरह सह जाती है। "शायद इसीलिये लतमरवा भैया ने आश्रय दिया है, अपनी बहना को। छोड़ना मत।...मारे जिसको जितना मारना हो, वह टस से मस होने से रही। लतमरवा भैया का सहारा जो मिल गया है उसे।"[11]

'और चाँद खो गया' की अलंकृता की समस्याएं ठीक रधिया जैसी नहीं हैं। अलंकृता पढ़ी-लिखी खासकर अंग्रेजी पढ़ी-लिखी आधुनिक नगरीय स्त्री है। प्रारम्भ में वह बेटे-बेटियों के मामले में आदर्शवादी है। किरण के जन्म के समय "...पास-पड़ोस में खूब मिठाइयाँ बँटी। हिजड़ों ने नाच किया। अलंकृता ने मुक्तहस्त पैसे लुटाये।"[12] किंतु तीन बेटियों के जन्म के बाद उसका आदर्शवाद काफूर हो जाता है। कभी राजेश को अल्ट्रासाउण्ड के मुद्दे पर 'मेल मेंटलिटी' की झिड़की देने वाली अलंकृता का मन बेटे के समर्थन में तर्क गढ़ने लगता है- "बेचारा राजेश जब शरीर से अशक्त हो जायेगा तब कौन करेगा उसकी देखभाल। बेटियाँ तो अपने घर चली जायेंगी।..."[13] अलंकृता की सास का व्यवहार अलंकृता के प्रति शालीन है किंतु पोते की चाह जैसी रधिया की सास सनीचरी में है वैसी ही अलंकृता की सास में भी है। बेटे-बेटियों में भेदभाव भारतीय समाज की बहुत बड़ी विडम्बना है। अलंकृता की सास कहती है-" बहू! पंडित जी से दिखाकर आयी हूँ।...इस बार जरूर मनसा पूरी होगी। इस मेरे आँगन में चाँद उतरेगा ही। बस, तुझे

शनिवार के दिन पीपल-वृक्ष को एक लोटा जल चढ़ाना होगा।"[14] दोनों ही कहानियों में ये दोनों माँएँ पुत्र पाकर भी, नहीं पाती हैं। यही इनकी नियति है।

'मुक्तिदाता' असफल प्रेम की त्रासदी है। स्त्री-पुरुष प्रेम के अंकुर का सफल आरोपण विवाह की भूमि पर ही होता है। अगर इस अंकुर को यह भूमि नहीं मिली तो यह सड़ जाता है। मनोज्ञा ने मन्मथ से प्रेम किया किंतु मन्मथ के लिये यह प्रेम शारीरिक सुख से अधिक कुछ ही नहीं। लेखक ने इस कहानी को 'बीज', 'वृक्ष' और 'फल' नामक तीन खण्डों में बाँटा है। फल-खण्ड में मनोज्ञा, मन्मथ का प्रेम आकार लेने लगता है। मनोज्ञा द्वारा मन्मथ पर विवाह के लिये दबाव डाले जाने पर मन्मथ आनाकानी करता है। वृक्ष-खण्ड में मनोज्ञा का प्रेम समाज में उजागर होने लगता है। उसके पिता व भाई उसकी हत्या करवाते हैं। यहाँ लेखक यह प्रश्न पाठक के सामने छोड़ जाता है कि वास्तव में मनोज्ञा के पिता व भाई ही उसके हत्यारे हैं या यह समाज भी है जिसके सामने प्रेम को स्वीकार करने का सामर्थ्य न तो मन्मथ में है और न ही मनोज्ञा के घरवालों में। पर मनोज्ञा का दुर्भाग्य! वह बच जाती है। उसे अब भी मन्मथ पर पूरा भरोसा है। फल-खण्ड में मनोज्ञा की हत्या स्वयं मन्मथ के हाथों होती है। 'ऑनर-किलिंग' और 'प्रेम में धोखा' जैसी चीजें इस कहानी को आज भी प्रासंगिक बनाती हैं। हर दूसरे-तीसरे दिन हमारे समाचार-पत्र ऐसी घटनाओं से अँटे पड़े रहते हैं। प्रेम का पवित्र भाव ऐसी घटनाओं के कारण मलिन हो जाता है। और इस प्रेम का अंत मनोज्ञा की हत्या से होता है। न जाने कब तक ऐसे प्रसंगों में बलिदान स्त्री को ही होना पड़ेगा और न जाने कब तक उदय, अरूण और मन्मथ जैसे हत्यारे मनोज्ञाओं की हत्यायें करते रहेंगे।

'चक्रव्यूह', 'और चाँद खो गया' तथा 'मुक्तिदाता' की पीड़िताओं की संगति जयशंकर प्रसाद की "नारी! तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास-रजत-नग पगतल में" से नहीं बैठती, उसकी संगति बैठती है तो मैथिली शरण गुप्त की, "अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, आँचल में दूध और आँखों में पानी" से।

इस संग्रह की पाँचवीं कहानी है 'रैन भई चहुँ देश' और इसी नाम से संग्रह छपा है। खुसरो मियाँ का प्रसिद्ध दोहा है- "गोरी सोवै सेज पै, मुख पर डारे केस/चल खुसरो घर आपने रैन भई चहुँ देस"। यह उन्होंने अपने गुरु निजामुद्दीन औलिया के इंतकाल पर कहा था। यह दुखी खुसरो का निराश स्वर था। ठीक यही निराशा सरिता और बाद में गिरिधर में व्यक्त होती है। यह कहानी सामाजिक-पारिवारिक जटिलताओं को अंकित करती है। संवेदना के स्तर पर यह पाठक को झकझोर कर रख देती है। विभिन्न कहानी आंदोलनों ने कहानी का कुछ भला किया या नहीं, किंतु कहानी से कहानीपन को निकाल देने का भरपूर प्रयत्न किया। कहना न होगा कि 'रैन भई चहुँ देश' में वह कहानीपन सुरक्षित है। संवेदना के स्तर पर पाठक इससे भली प्रकार जुड़ जाता है। यह उसके अपने आस-पास की कहानी है। आज के दौर में जब कहानियाँ समीक्षकों के लिये लिखी जाती हैं ऐसे में ये कहानियाँ पाठकों के लिये लिखी गयी हैं। कहानी के शिल्प की बात की जाय तो यह 'रेणु' के काफी अधिक नजदीक है तथापि कथ्य में नवीनता है।

" हीरामन परदे के पीछे से देखता है। हीराबाई एक दियासलाई की डिब्बी के बराबर आईने में अपना दांत देख रही है।...मदनपुर मेले में एक बार बैलों को नन्हीं चित्ती कौड़ियों की पात!"

- 'तीसरी कसम' (फणीश्वरनाथ 'रेणु')

"पूछते-पूछते अचानक ही हँस पड़ती दी- 'खिल-खिल-खिल' उज्जर, धप्-धप् मोती जैसे दाँत। आकाश में उड़ते बगुलों की पात भी लजा जाए बड़की दी के दांतों के सामने। "

- 'रैन भई चहुँ देश' (डॉ. दिवाकर पाण्डेय)

पूरी कहानी में ऐसे बहुत से स्थल हैं जहाँ 'रेणु' और लेखक में भेद करना कठिन हो जाता है। यदि किसी पाठक को लेखक का नाम बताये बिना यह कहानी पढ़ने के लिये दे दी जाय तो वह इसे निश्चित ही 'रेणु' की कहानी मान लेगा। ठीक यही बात तब भी होती यदि लेखक, 'रेणु' से पहले स्थापित हो चुका होता, अंतर बस इतना होता कि तब 'रेणु' की ऐसी कहानियाँ, लेखक की मान ली जातीं। किसी अंचल विशेष से संबंधित दो भिन्न लेखकों में समान शब्द-प्रयोगों, मुहाविरों व उपमाओं का प्रयोग अस्वाभाविक नहीं है किंतु इससे भी इनकार नहीं किया जा सकता कि शैलीगत वैभिन्य लेखक को स्वतंत्र अस्तित्व प्रदान करते हैं।

'रैन भई चहुँ देस' की सरिता, कहानी की नायिका कही जा सकती है। वह कथा में प्रत्यक्ष नहीं है। वह 'बड़की दी' के रूप में उसके मायके के नौकर गिरिधर की स्मृतियों में है। गिरिघर का 'बड़क दी' से अगाध स्नेह है। पूरे परिवार में एक बड़क दी ही तो है जो गिरिधर से दो मीठे-बोल बोल लेती है, उसे गिरिघर भैया कहती है। गिरिधर इस स्नेह से निहाल हो उठता है। गिरिधर ही नहीं, धवरी गाय और टीकरा कुत्ता भी बड़क-दी के स्नेह-भाजन हैं। लेखक ने 'बड़क दी' का चरित्र-चित्रण स्नेह-निर्झर के रूप में किया है।

लेखक ने संकेत किया है कि अपने शहर प्रवास के दौरान बड़क दी के हृदय में प्रेम अंकुरित हो जाता है। वह जब गाँव आती है तो गिरिधर को चिट्ठी देकर डाकखाने भेजती है- "का कहते हैं कि रंगीन कागज पर लिख लिख कर उसमें शीशी का गमकौआ इत्तर डालकर लिफाफे में भरकर साट देती थी। फिर उसे खूब प्रेम से निहारती थीं और लिफाफे को चुम्मा लेकर दे देती थीं मुझे डाक में डालने के लिये।"[15] किंतु यह प्रेम अपनी मंजिल तक नहीं पहुँच पाता है। 'मुक्तिदाता' की मनोज्ञा की भाँति सरिता के भाई और पिता उसका गला घोट देते हैं-बस तरीका थोड़ा अलग है। मनोज्ञा को सीधे-सीधे मारा जाता है जबकि सरिता का एक शराबी से ब्याह कराकर तिल-तिल मरने के लिये छोड़ दिया जाता है- "...दीदी ने पीठ पर की साड़ी सरका दी। पूरी पीठ पर गोहिया के निसान थे। ...कुछ काले काले तो कुछ लाल-लाल"।[16] अपनी अन्य कहानियों की तरह इस कहानी में भी लेखक कुछ नहीं बोलता है, किंतु स्त्री-वेदना का प्रत्यक्षीकरण अवश्य करा देता है।

इस संग्रह की अंतिम चार कहानियों 'मिशन एन.जी.ओ.', 'उत्तर बैताल कथा', 'लकठुआ ब्रांड' और 'लकठुआ ब्रांड-2' में सामाजिक विसंगतियों, नैतिक मूल्यों के ह्रास तथा राजनैतिक व शैक्षणिक जगत के भ्रष्टाचार की एक सटीक और वास्तविक पहचान की गयी है। कथा-साहित्य के लिये कई बार कोरी कल्पनाओं से काम लिया जा सकता है लेकिन उनमें व्यंग्य की धार पैदा करने के लिये साहित्यकार के अपने अनुभव ही काम आते हैं। हरिशंकर परसाई लिखते हैं-

" ...साहित्यकार का समाज से दोहरा संबंध है। वह समाज से अनुभव लेता है, अनुभवों में भागीदार होता है। बिना सामाजिक अनुभवों के कोई सच्चा साहित्य नहीं लिखा जा सकता, लफ्फाजी की जा सकती है। उन छिपे अंधेरे कोनों का अंवेषण करता है जो सामान्य चेतना के दायरे में नहीं आते।" [17]

ठीक यही जीवनानुभव व्यंग्य-लेखक को समकालीन विडंबनाओं और विद्रूपताओं को उकेरने में सहायक होता है। यहाँ लेखक सीधे-सीधे मुद्दे पर आता है। अपनी बात को कहने के लिये उसे किसी विशेष टेक्नीक की चिंता नहीं है। वर्णन की रोचकता पाठक को बाँधने में सक्षम है। 'मिशन एन.जी.ओ.' में भारत में बढ़ते हुये एन.जी.ओ. और इसके वास्तविक चरित्र को उकेरा गया है। तीखेश्वरनाथ त्यागी एक घाघ और धूर्त चरित्र है जो एन.जी.ओ. का गठन अपने व्यक्तिगत हित साधने के लिये करता है। उसके चरित्र को उभारने और एन.जी.ओ. के वर्तमान स्वरूप को लेखक इस प्रकार चित्रित करता है-

" क्या करते हैं? एन.जी.ओ. चलाते हैं। एन.जी.ओ. माने? नान गवर्नमेंट आर्गनाइजेशन। यानी गैर सरकारी संगठन। कामधेनु। बिना बछड़े का दूध देने वाली सूधी गैया। सोने का अंडा देने वाली मुर्गी।"[18]

तनिक विचारकर देखा जाय तो सरकार द्वारा चलाई गयी सारी योजनाओं का लाभ जिनको मिलना चाहिये उन्हें छोड़कर, बाकी सभी लोग उनका लाभ उठाते हैं। फिर एन.जी.ओ. तो नाम से ही नान गवर्नमेंट आर्गनाईजेशन ठहरा। मीडिया को लोकतंत्र का चौथा खंभा कहा गया है। और इस खंभे की हालत क्या है-

" खंभा,खंभा,खंभाSS ।.. तेरे खंभे को घुन लग गया है। भरभराकर गिर जायेगा किसी दिन।... कितने लोग पढ़ते हैं तुम्हारी रद्दी लुगदी को?... सैलून, चाय की दुकान और अधिक से अधिक स्टेशन के स्टॉलों पर दो-चार पढ़ने वाले मिल जायेंगे। बाकी तो बस... पहला पन्ना... 'नेताजी का घोटाला'... दूसरा पन्ना... 'कूदकर डूबी नदी में रेल' ...तीसरा पन्ना... 'नेताजी को नकसीर: इलाज के लिये अमेरिका रवाना' ...चौथा पन्ना... 'नवयुवती से सामूहिक बलात्कार' ...।"[19] तीखेश्वरनाथ एक धूर्त व्यक्ति है लेकिन लोकतंत्र के यथार्थ रूप को उसने खूब पहचाना हुआ है।

यूँ तो तुलनात्मक अध्ययन का फैशन आजकल कुछ कम – सा हो गया है लेकिन आज भी किसी कृति या रचना के वास्तविक मूल्यांकन में यह पद्धति बहुत ठोस आधार के रूप में उपयोग में लायी जा सकती है। इसके कम हो चुके चलन का कारण यह भी हो सकता है कि यह पद्धति अध्येता से विशद अध्ययन की अपेक्षा रखती है और आजकल बोनसाई के जमाने में सब कुछ बस छोटे में ही निपटा दिया जाता है। 'उत्तर बैताल कथा' का शिल्प, जार्ज ऑरवेल की 'दी एनिमल फार्म' या 'पंचतंत्र' की कोटि का है। जातक-कथाओं में भी जानवर-पात्रों के माध्यम से कथा-कहने की परिपाटी रही है। किंतु पंचतंत्र या जातक कथाओं का मूल उद्देश्य शिक्षा या धार्मिक उपदेश रहा है और यहाँ कथा के माध्यम से इतिहास का पुनर्चित्रण है। 'उत्तर बैताल कथा' का प्रारम्भ बेताल-पचीसी के विक्रम-बेताल की चिर-परिचित परंपरा से किया गया है।

खैर! 'उत्तर बैताल कथा' के सारे चरित्र जंगल से हैं पर यहाँ ध्यान देने की बात है कि वे सभी जंगल से होने के बावजूद जंगली नहीं हैं, कारण कि जंगल में लोकतंत्र स्थापित हो चुका है और जंगल सभ्य हो चुका है। जंगल में एक विश्वविद्यालय स्थापित किया जाना है। अत: इस विश्वविद्यालय-विशेष की स्थापना, इसके कारक तत्वों, इसके नामकरण तथा नामकरण के आधार-कारणों का लेखक ने व्यंग्य शैली में बहुत ही रोचक वर्णन किया है। लेखक ने कथा का प्लॉट वास्तविक धरातल से लिया है। इतिहास को परिभाषित करने के लिये कहा जाता है कि यह 'मूलवृत्तम् कथायुक्तम्' होता है। इस कहानी के द्वारा विश्वविद्यालय-विशेष के इतिहास को परिभाषित करने के लिये कहा जा सकता है- 'मूलवृत्तम् व्यंग्ययुक्तम्'। यह पहले ही कहा जा चुका है कि यह कहानी एक विश्वविद्यालय-विशेष को ध्यान में रखकर लिखी गयी है, अत: इसको उस विश्वविद्यालय विशेष के संदर्भ में भी रखकर देखा जा सकता है और इसे इस तरह के अन्य विश्वविद्यालयों के रूपक के रूप में भी देखा जा सकता है। इस बात को भारतेंदु के प्रसिद्ध नाटक 'अंधेर नगरी, चौपट राजा' से समझा जा सकता है जो कि बिहार के एक जमींदार को केंद्र में रखकर लिखा गया था लेकिन यह तत्कालीन भारत के अधिकांश अविवेकी राजाओं और जमींदारों की शासन प्रणाली के रूपक के रूप में ख्यात हुआ।

तंत्र द्वारा कुलपति की नियुक्ति में अपनाया जाने वाला मानक आज भी चर्चा में रहता है-

" इधर पद के प्रत्याशियों में कुछ ऐसे भी थे जो सीधे महामात्य के संपर्क में थे। वे उत्कोच की असंख्य स्वर्णमुद्राओं के साथ-साथ महँगे मद्य और सजीव मादा मांस लेकर उपस्थित होने लगे/ महामात्य ने स्वर्ण-मुद्राओं को टटोला, मद्यों को सूँघा और सजीव मादा मांसो को चाटा। जो प्रत्याशी सबसे अधिक मुद्रायें, सबसे तेज मद्य और सबसे सुंदर और स्वादिष्ट मादा मांस लाया था, उसे कुलपति पद पर आसीन करने का वचन दे दिया।"[20]

व्यंग्य की धार बड़ी मारक होती है। एक राजस्थानी उक्ति है- दव का दाघा कूँपल लेइ, जीभ का दाघा न पाल्हवइ। यानि दावाग्नि में भस्म हुआ वृक्ष कोंपल धारण भले ही कर ले, किंतु जीभ से जला व्यक्ति कभी पल्लवित नहीं हो सकता। व्यंग्य-लेखक की जीभ उसकी कलम होती है। इसी से वह विसंगतियों पर प्रहार करता है। इस कहानी में, जानवरों की भिन्न-भिन्न प्रजातियाँ भिन्न-भिन्न प्रभाव समूहों को दर्शाती हैं। इस कहानी की बुनावट के रेशे इतने महीन हैं कि प्रतीकों के उस पार की वास्तविक दुनिया साफ-साफ दिखने लगती है। चूँकि लेखक स्वयं एक प्रोफेसर है अत: उसके द्वारा अपने आस-पास के परिवेश पर इतना स्पष्ट और तल्ख प्रहार बड़े साहस का काम है।

'लकठुआ ब्रांड' और 'लकठुआ ब्रांड-2' इस संग्रह की अंतिम दो कहानियाँ हैं। इनका नायक लकठो प्रसाद उर्फ लकठुआ है। लकठुआ को लेखक ने एक निहायत सरल और ईमानदार चरित्र के रूप में चित्रित किया है। 'लकठुआ ब्रांड' में लेखक ने विश्वविद्यालयीय जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार को दिखाया है वहीं 'लकठुआ ब्रांड-2' में इसका विस्तार शासन-प्रशासन के हर क्षेत्र में हो जाता है। किसी भी व्यंग्य को समझने के लिये डॉ. वीरेंद्र मेहंदीरत्ता 'आधुनिक हिंदी साहित्य में व्यंग्य' में लिकते हैं- "व्यंग्य के प्रहार की क्षमता तथा उसकी व्यंजना की गहराई का अनुमान पाठक तब लगा सकता है जब उस रचना की प्रेरक परिस्थिति से परिचय होगा।" इन पंक्तियों के आलोक में लकठुआ की निर्मिति को समझा जा सकता है। चूँकि लकठुआ कर्तव्यनिष्ठ शिक्षक है सो उसका दण्ड उसे मिलना ही था-

" छात्रों में लोकप्रिय होते ही वे अपने सहयोगियों के लिये ईर्ष्या के पात्र हो गये। उन्हें नीचा दिखाने के लिये तरह-तरह के षड्यंत्र रचे जाने लगे।..." 21

भगवान की पूर्व निर्धारित शर्त के अनुसार जब-जब लकठुआ से चूक होती गयी तब-तब उसका प्रमोशन होता गया। शिक्षक से विभागाध्यक्ष, प्रिंसिपल और कुलपति तक बन जाना पड़ता है उसे। अब भगवान उसे शिक्षामंत्री बनाना चाहते हैं। लकठुआ हाथ जोड़ लेता है और भगवान से विनती कर पुन: अपने पुराने रूप में आकर लकठो बनाने लगता है। इस सम्पूर्ण घटनाक्रम में लकठुआ के बहाने लेखक शैक्षणिक संस्थाओं में व्याप्त भ्रष्टाचार को दिखा सकने में सफल हो जाता है।

लकठुआ ब्रांड-2 के नाम से ही स्पष्ट है कि ये लकठुआ ब्रांड का सीक्वेल है। पहले जहाँ वह शिक्षा में सुधार अभियान चलाये हुआ था वहीं दूसरे भाग में वह राजनीति के माध्यम से जनसेवा करना चाहता था। पर यहाँ भी वह सफल नहीं होता। वह क्या! कोई भी आज आचरण की शुचिता के बल पर विधायक या मंत्री नहीं बन सकता और अगर बन भी जाय तो उसे सिस्टम से निकाल बाहर कर दिया जायेगा या इस घुटन भरे माहौल से स्वयं ही निकल जायेगा। इन दोनों परिस्थितियों में हार लोकतंत्र की ही होती है।

कुल मिलाकर इस संग्रह में भावुक कर देने वाली कहानियाँ हैं, हमारी शिक्षा-व्यवस्था, राजनीति और समाज को कटघरे में खड़ी करती कहानियाँ हैं, राजनीतिक दलों की सच्चाई को उजागर करती कहानियाँ हैं और स्त्री-पीड़ा को स्वर देती कहानियाँ हैं। ये कहानियाँ पाठक को हँसाती भी हैं, रुलाती भी हैं और जगह-जगह आक्रोशित भी करती हैं।

सन्दर्भ-

1. कैथरीन मैंसफील्ड: अ कप ऑव टी (The Doves' Nest and other stories, London 1923)

2. डॉ. दिवाकर पाण्डेय (2015): बौना (रैन भई चहुँ देस, आयुष्मान पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली) पृ.सं.-2

3. वही, पृ.सं.-2

4. वही, पृ.सं.-10

5. वही, पृ.सं.-2

6. डॉ. दिवाकर पाण्डेय (2015): बौना (रैन भई चहुँ देस, आयुष्मान पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली) पृ.सं.-5

7. सुदामा पाण्डेय 'धूमिल' (2013): भाषा की रात (संसद से सड़क तक, पृ. 88, राजकमल प्रकाशन)

8. डॉ. दिवाकर पाण्डेय (2015): चक्रव्यूह (रैन भई चहुँ देस, 2015 में आयुष्मान पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली) पृ.सं.-14

9. वही, पृ.सं.-11

10. वही, पृ.सं.-18

11. वही, पृ.सं.-18

12. डॉ. दिवाकर पाण्डेय (2015): और चाँद खो गया (रैन भई चहुँ देस, आयुष्मान पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली) पृ.सं.-28

13. वही, पृ.सं.-32

14. वही, पृ.सं.-31

15. डॉ. दिवाकर पाण्डेय (2015): रैन भई चहुँ देस (रैन भई चहुँ देस, आयुष्मान पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली) पृ.सं.-49

16. वही, पृ.सं.-61

17. हरिशंकर परसाई: पूर्वग्रह अंक 10 पृ. दो

18. डॉ. दिवाकर पाण्डेय (2015): मिशन एन. जी. ओ. (रैन भई चहुँ देस, आयुष्मान पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली) पृ.सं.-77

19. वही, पृ.सं.-79

20. डॉ. दिवाकर पाण्डेय (2015): उत्तर बैताल कथा (रैन भई चहुँ देस, आयुष्मान पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली) पृ.सं.-109

21. डॉ. दिवाकर पाण्डेय (2015): लकठुआ ब्रांड (रैन भई चहुँ देस, आयुष्मान पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली) पृ.सं.-119